दैनिक भास्कर

Date: 05-06-24

मतदाताओं ने बता दिया कि उनके लिए मुद्दे मायने रखते हैं

संपादकीय

लोकसभा चुनाव के नतीजे सत्ता और विपक्ष दोनों के लिए बहुत कुछ कहते हैं। सत्ता के लिए जन स्वीकार्यता को तीसरी बार भुनाना तब और मुश्किल होता है जब जनता कुछ और चाहती है। आम चुनावों के परिणाम इस बात का संकेत हैं कि जनता के लिए उसकी जरूरत से जुड़े मुद्दे ज्यादा मायने रखते हैं क्या यह सच नहीं है कि नीचे के वर्ग, खासकर किसान, श्रमिक और दिहाड़ी मजदूर की आय हाल के वर्षों में लगातार घटी है और महंगाई इस वर्ग को बुरी तरह आहत कर रही है ? क्या सीएमआईई की विगत अप्रैल की रिपोर्ट चीख-चीख कर नहीं बता रही थी कि पिछले सात वर्षों में ओबीसी और अनुसूचित जाति वर्गों में बेरोजगारी सबसे ज्यादा बढ़ी है। दूसरा, धार्मिक वर्ग में बेरोजगारी सिखों और हिन्दुओं में अन्य सभी धर्मों से ज्यादा बढ़ी है। क्या इससे पैदा हुई नाराजगी को दस साल बाद भी मंगलसूत्र, मंदिर और मुसलमान के नाम पर कम किया जा सकता था? पाँच किलो अनाज एक गरीब के जीवन में बहुत कुछ होते हुए भी सब कुछ नहीं है। उसे बेटे के लिए नौकरी, नवजात के लिए दूध-पोषण, बूढ़े मां-बाप के इलाज के लिए आयुष्मान के नाम पर कागज का टुकड़ा नहीं, पहुंचने वाली दूरी पर असली चिकित्सा सेवा चाहिए। भोगा हुए कटु यथार्थ आम आदमी नजरअंदाज नहीं कर पाता। बेरोजगारी दर की तरह रोजगार दर के पैमाने पर भी सबसे ज्यादा गिरावट इन सात वर्षों में सभी वर्गों में हुई है। जाति वर्गीकरण में पाया गया कि बेरोजगारी सबसे ज्यादा उच्च जाति में थी लेकिन मध्य-जाति, जो आरक्षण की मांग कर रही है, उसकी बेरोजगारी दर में वृद्धि प्रतिशत पॉइंट में सबसे ज्यादा है। यह वह वर्ग है, जो खेती करता है और जिसके बच्चे असुविधा और अभाव के कारण समाज में ऊपर की सीढ़ियां चढ़ने में अक्षम हैं। भाव न बढ़ें, लिहाजा गेहूं, चावल, चीनी और प्याज का आयात रोकने की नीति ने इनकी गरीबी को और बढ़ाया। लोकसभा चुनाव परिणाम क्या इशारा करते हैं? आने वाले वक्त में राजनीति में मुद्दों की राजनीति को नकारा नहीं जा सकता।

दैनिक जागरण

Date: 05-06-24

गठबंधन युग की वापसी

संपादकीय

लोकसभा के चुनाव नतीजों ने एक्जिट पोल के निष्कर्षों के साथ अन्य अनेक अनुमानों को भी गलत साबित किया। परिणाम कई दृष्टि से अप्रत्याशित हैं, लेकिन लोकतंत्र की यही खूबसूरती है। जनता के मन में क्या है, इसकी थाह लेना कठिन होता है। नतीजों ने बताया कि जो भाजपा अपने सहयोगी दलों के साथ चार सौ पार का नारा लगा रही थी, उसके लिए तीन सौ पार जाना भी चुनौती बन गया।

स्वयं भाजपा 272 के आंकड़े से पीछे रह गई। यह उसके लिए एक झटका है। उसे यह झटका लगा उसके अपने गढ़ उत्तर प्रदेश में भी। इसके साथ ही महाराष्ट्र, राजस्थान, हरियाणा और बंगाल में भी वह अपेक्षित प्रदर्शन नहीं कर सकी। उसके लिए यह तो अच्छा रहा कि ओडिशा, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश आदि में उसने उल्लेखनीय प्रदर्शन किया और गुजरात एवं मध्य प्रदेश में चमत्कार सा कर दिखाया, अन्यथा वह और भी पीछे रह जाती। चुनाव नतीजों से यह स्पष्ट है कि कांग्रेस और उसके सहयोगी दलों ने आशा से कहीं अधिक बेहतर प्रदर्शन किया। जहां कांग्रेस ने अपनी सीटें अच्छी-खासी बढ़ा लीं, वहीं समाजवादी पार्टी, डीएमके, तृणमूल कांग्रेस ने भी अपेक्षा से बेहतर प्रदर्शन कर भाजपा को चौंकाया।

चुनाव नतीजों ने कांग्रेस और उसके साथ खड़े दलों को राजनीतिक बल देने के साथ उनके मनोबल को भी बढ़ाने का काम किया है। कांग्रेस वापसी की राह पर आती दिख रही है और इसका श्रेय जाता है उसकी ओर से बनाए गए नैरेटिव को। निःसंदेह भाजपा ने भी अपना नैरेटिव स्थापित करने की कोशिश की, लेकिन वह पूरे देश में उतना प्रभावी नहीं रहा। वह अपने पक्ष में वैसा कोई राष्ट्रीय विमर्श खड़ा नहीं कर सकी, जैसा पिछले आम चुनाव में बालाकोट हमले के कारण खड़ा करने में सफल रही थी। जहां भाजपा ने रेवड़ी संस्कृति से दूर रहना तय किया, वहीं विपक्ष ने इस संस्कृति को जोर-शोर से अपनाया और भुनाया भी। इसके अलावा कांग्रेस और सहयोगी दलों ने भाजपा की ओर से आरक्षण खत्म करने और संविधान बदलने की जो हवा बनाई, वह भी कुछ राज्यों और विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में असर करती दिखी। भाजपा को सबसे बड़ा झटका उत्तर प्रदेश में ही लगा। इसका कारण कमजोर प्रत्याशी और नेताओं की आपसी खींचतान भी दिखती है और जाति-पंथ की राजनीति भी। केंद्रीय मुद्दे के अभाव में स्थानीय मुद्दे भी कहीं अधिक असरकारी हो गए और इसी कारण अलग-अलग राज्यों में हार-जीत के कारण भी भिन्न-भिन्न दिख रहे हैं। विपक्षी दल तो जनता को लोकलुभावन वादों से लुभाने में सफल रहे, लेकिन भाजपा विकसित भारत और देश को तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बनाने जैसे वादों से जनता के एक वर्ग और विशेष रूप से निर्धन-वंचित तबके को उतना आकर्षित नहीं कर सकी। इस तबके को इन वादों में अपने लिए कुछ खास न दिखाई दिया हो तो हैरानी नहीं।

भाजपा के लिए यह संतोष की बात है कि ओडिशा की बागडोर उसके हाथ आ गई और आंध्र में उसके सहयोगी चंद्रबाबू नायडू सरकार बनाने जा रहे हैं, लेकिन इसके बावजूद वह लोकसभा में संख्याबल के लिहाज से कमजोर हुई है। अब केंद्रीय स्तर पर गठबंधन राजनीति और वह भी मजबूरियों वाली राजनीति फिर से एक आवश्यकता बन गई है। बहुमत के साथ सहयोगी दलों संग सरकार चलाना अलग बात है और उन पर निर्भर होकर शासन करना अलग बात। इस बार प्रधानमंत्री मोदी के सामने गठबंधन सरकार चलाने की मजबूरी होगी। इसके चलते निर्णायक प्रधानमंत्री की उनकी छवि पर असर पड़ सकता है और इसका प्रभाव शासन संचालन में दिख सकता है। अब भाजपा को अपनी प्राथमिकताओं से भी समझौता करना पड़ सकता है, क्योंकि उसे अपने एजेंडे को लागू करने के लिए सहयोगी दलों पर निर्भर रहना होगा। गठबंधन सरकार की कुछ मजबूरियां होती हैं। उनका लाभ सहयोगी दल ही नहीं, बल्कि विपक्षी दल भी उठाते हैं। विपक्ष

की ताकत बढ़ जाने से से भावी सरकार को उसके साथ कहीं अधिक सहयोग और समन्वय का परिचय देना होगा। यह परिचय देने के लिए विपक्ष को भी तैयार रहना चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 05-06-24

गठबंधन का दौर वापस

संपादकीय

लोकसभा चुनाव के नतीजों ने ज्यादातर एक्जिट पोल को गलत साबित किया और साफ तौर पर दिखा दिया कि भारत में चुनाव पहले की तरह कड़े मुकाबले वाले बने हुए हैं। भारतीय जनता पार्टी 240 सीट पर आगे है या जीत चुकी है। यानी वह अकेले दम पर बहुमत के आंकड़े से दूर है। हालांकि, उसके नेतृत्व वाला राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) आसानी से अगली सरकार बनाने का दावा पेश कर सकता है। ऐसे में करीब एक दशक बाद भारत में गठबंधन सरकार की वापसी हो रही है। लोक सभा के साथ ही जिन कुछ महत्वपूर्ण राज्यों में विधान सभा चुनाव हुए, मंगलवार को घोषित नतीजों के अनुसार उनमें राजग को अच्छा फायदा हुआ है और वह मौजूदा सरकारों को सत्ता से बाहर करने में कामयाब हुआ है। ओडिशा में करीब 23 साल से सत्ता में रहा बीजू जनता दल हार गया और राज्य की 147 सदस्यीय विधान सभा में भाजपा 80 सीट जीत रही है। इसके पड़ोसी राज्य आंध्र प्रदेश में एन चंद्रबाबू नायडू के नेतृत्व वाली तेलुगू देशम पार्टी भी जबरदस्त जीत हासिल करते हुए अगली सरकार बनाने जा रही है। राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो भाजपा ने अपनी मत हिस्सेदारी में मामूली सुधार किया है, लेकिन उसे 2019 के बराबर भी सीट नहीं मिल पाई। दूसरी तरफ, कांग्रेस भी अपनी मत हिस्सेदारी करीब 3 फीसदी बढ़ाने में सफल हुई लेकिन उसकी सीट संख्या करीब दोगुनी हो गई है। भाजपा ने उत्तर प्रदेश जैसे हिंदी पट्टी के अहम राज्य में अपनी जमीन गंवा दी है। हरियाणा और महाराष्ट्र के आंकड़ों को देखते हुए अब यह देखना दिलचस्प होगा कि इन राज्यों में अगले कुछ महीने में होने वाले विधानसभा चुनाव में क्या होता है? कई लोगों का यह मानना है कि गठबंधन सरकार सुधार प्रक्रिया को धीमी कर सकती है, शेयर बाजार सूचकांकों में भारी गिरावट इसी आशंका को दिखाती है, लेकिन साल 1991 में देश में आर्थिक सुधार की प्रक्रिया एक अल्पमत सरकार ने शुरू की थी और बाद में 2014 तक उसे गठबंधन सरकारों ने जारी रखा। अब ज्यादा सहमति बनाने की जरूरत होगी, जिससे निस्संदेह कुछ फैसलों में देरी हो सकती है, लेकिन इससे राजनीतिक स्वीकार्यता बढ़ेगी।

यह भी अहम होगा कि आर्थिक सुधारों के लिए अब राज्यों को भी साथ लिया जाए। वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के मामले में जिस तरह से केंद्र और राज्यों में सहयोग दिखा, उससे यह उम्मीद बनी थी कि अन्य क्षेत्रों में भी इसी तरह से सहयोग कायम कर सुधार प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सकता है। लेकिन साफ है कि ऐसा हो नहीं पाया है। इसलिए अगली सरकार के लिए यह सलाह होगी कि वह नीतिगत मसलों पर राज्यों के साथ सहयोग के लिए संस्थागत तंत्र को पुनर्जीवित करे। यह शायद नीति आयोग के जरिये हो सकता है या कोई नया तंत्र बनाकर। इससे भूमि, श्रम और कृषि जैसे क्षेत्रों में काफी समय से लंबित सुधारों को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी। करीब एक दशक बाद भारत को एक मजबूत विपक्ष मिला है और यह अब सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों के लिए अहम है कि वे एक-दूसरे की स्थिति का सम्मान करें।

इस समय देश के व्यापक आर्थिक मानदंड अनुकूल हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था वर्ष 2023-24 में 8.2 फीसदी की दर से आगे बढ़ी है और लगातार तीसरे साल 7 फीसदी से ज्यादा की वृद्धि हासिल हुई है। मौजूदा साल के लिए नजरिया भी अनुकूल है और अच्छे मॉनसून का साथ मिलने से यह अनुमान लगाया जा रहा है कि इस वर्ष करीब 7 फीसदी की वृद्धि होगी। महंगाई की हालत में भी सुधार हुआ है और पिछले कुछ वर्षों में बैंकों और कॉरपोरेट का बहीखाता काफी मजबूत हुआ है। लेकिन यह बताना भी अहम है कि हाल के वर्षों में आर्थिक वृद्धि में बड़ा योगदान ऊंचे सरकारी खर्च का रहा है, जिसकी कि अपनी सीमा होती है। वैसे तो सरकार इस वर्ष सहज राजकोषीय स्थिति में रहेगी, फिर भी उसे अपनी वित्तीय स्थिति को मजबूत करना होगा। इसलिए निजी क्षेत्र के लिए यह अहम होगा कि वह सतत आर्थिक वृद्धि को बनाए रखने के लिए सरकार की कमी पूरी करे। फिलहाल तो निजी क्षेत्र ज्यादा निवेश से हिचक रहा है क्योंकि निजी खपत भी कमजोर है। खपत कमजोर रहने की एक वजह नौकरियों की हालत भी है। समग्र बेरोजगारी में तो कमी आ रही है, लेकिन ज्यादातर लोग खेती या स्वरोजगार, बहुत छोटे उद्यम चलाने जैसे कम उत्पादकता वाले पेशे में लगे हुए हैं। चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों से भी यह संदेश मिला था कि रोजगार मतदाताओं के बीच सबसे बड़े मुद्दों में से एक है।

इस नतीजे ने इस पर भी सवाल खड़े किए हैं कि देश में बढ़ते कार्यबल के लिए उत्पादक रोजगार का प्रबंध न होने के बीच मुफ्त अनाज जैसी योजनाएं कब तक कारगर हो सकती हैं। रोजगार का मसला हल करने के लिए अगली सरकार के लिए यह अहम होगा कि वह विनिर्माण को बढ़ावा दे, जहां कम कुशल कामगारों को बड़ी संख्या में काम मिल सकता है। घरेलू मांग बढ़ाने के साथ ही भारत को निर्यात बढ़ाने पर भी जोर देना होगा, जिसके लिए व्यापार नीति में समीक्षा की जरूरत होगी। निर्यात को बढ़ावा देने और रोजगार सृजन के लिए यह जरूरी है कि देश वैश्विक मूल्य श्रृंखला का हिस्सा बना रहे। ऊंचे शुल्क इसमें अड़चन बनते हैं। अब काफी कुछ नई सरकार की संरचना, ढांचे और कार्यक्रमों पर निर्भर करेगा, लेकिन आर्थिक नीति निर्माण क्षमता में सुधार और परामर्श बढ़ाने से निश्चित रूप से फायदा होगा।

जनसत्ता

Date: 05-06-24

जैव विविधता बचाने की चुनौतियां

अमित बैजनाथ गर्ग

भारत जैव विविधता से समृद्ध देश है। विश्व के चौंतीस जैव विविधता क्षेत्रों में से चार भारत में हैं। इसी प्रकार विश्व के सत्रह 'मेगा-डायवर्सिटी' देशों में भारत शामिल है। इस प्रकार जैव विविधता न केवल पारिस्थितिकी तंत्र का आधार निर्मित करता, बल्कि देश में आजीविका को भी आधार प्रदान करता है। भारत में जैव विविधता संरक्षण के लिए कई उपाय किए गए हैं जैसे कि 103 राष्ट्रीय उद्यानों, 510 वन्य जीव अभ्यारण्यों, 50 टाइगर रिजर्व, 18 बायोस्फीयर रिजर्व, तीन कंजर्वेशन रिजर्व तथा 2 सामुदायिक रिजर्व की स्थापना। जैव विविधता संरक्षण के लिए राष्ट्रीय जैव

विविधता कार्रवाई योजना तैयार की गई है, जो वैश्विक जैव विविधता रणनीतिक योजना 2011-20 के अनुकूल है। इसे 2010 में 'कन्वेंशन आन बायोलाजिकल डायवर्सिटी' की बैठक में स्वीकार किया गया था।

भारत में जैव विविधता और इससे संबंधित ज्ञान के संरक्षण के लिए 2002 में जैव विविधता अधिनियम तैयार किया गया। इस अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए त्रि-स्तरीय संस्थागत ढांचे का गठन किया गया है। अधिनियम की धारा 8 के तहत सर्वोच्च स्तर पर वर्ष 2003 में राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण का गठन किया गया, जिसका मुख्यालय चेन्नई में है। यह एक वैधानिक निकाय है, जिसकी मुख्य भूमिका विनियामक और परामर्शदाता की है। राज्यों में राज्य जैव विविधता प्राधिकरण की भी स्थापना की गई है। स्थानीय स्तर पर जैव विविधता प्रबंध समितियों (बीएमसी) का गठन किया गया है। नबीए के डेटा के अनुसार, देश के 26 राज्यों ने राज्य जैव विविधता प्राधिकरण एवं जैव विविधता प्रबंध समितियों का गठन किया है। अकेले महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में 43,743 बीएमसी का गठन किया गया है। इन समितियों का उद्देश्य देश की जैव विविधता और संबंधित ज्ञान का संरक्षण, इसके सतत उपयोग में मदद तथा यह सुनिश्चित करना कि जैविक संसाधनों के उपयोग से जनित लाभों को उन सबसे उचित और समान रूप से साझा किया जाए, जो इसके संरक्षण, उपयोग एवं प्रबंधन में शामिल हैं।

राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण के अनुसार, राष्ट्रीय जैव विविधता कार्रवाई योजना का क्रियान्वयन चुनौतीपूर्ण है। इसके सफल क्रियान्वयन में लोगों की भागीदारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। केरल के वायनाड जिले में एमएस स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन का सामुदायिक कृषि जैव विविधता केंद्र इस बात का बेहतरीन उदाहरण है कि कैसे स्थानीय स्वशासन को सुदृढ़ करके स्थानीय विकास योजनाओं में जैव विविधता संरक्षण को समन्वित किया जा सकता है। भारत के राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण ने हाल ही में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की मदद से ग्रामीणों की आजीविका में बेहतरी के नए मानदंड स्थापित किए हैं।

जैव विविधता पर सम्मेलन के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए व्यापक कानूनी और संस्थागत प्रणाली स्थापित करने में भारत काफी आगे रहा है। आनुवांशिक संसाधनों को लोगों के लिए उपलब्ध कराना और लाभ के निष्पक्ष, समान बंटवारे के सम्मेलन के तीसरे उद्देश्य को जैव विविधता अधिनियम 2002 और नियम 2004 के तहत लागू किया जा रहा है। राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण की पहुंच बढ़ाने और लाभ साझाकरण प्रावधानों के संचालन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर लोगों के जैव विविधता रजिस्टर और जैव विविधता प्रबंधन समितियों का संजाल तैयार किया जाता है।

2002 के अधिनियम के आधार पर बनी जैव विविधता प्रबंधन समितियां स्थानीय स्तर की वैधानिक निकाय हैं, जिनमें लोकतांत्रिक चयन प्रक्रिया के तहत कम से कम दो महिला सदस्यों की भागीदारी जरूरी होती है। ये समितियां शोधकर्ताओं, निजी कंपनियों, सरकारों जैसे प्रस्तावित उपयोगकर्ताओं की जैव संसाधनों तक पहुंच संभव बनाने और सहमति बनाने में मदद करती हैं। इससे जैव विविधता रजिस्टरों और जैविक संसाधनों के संरक्षण तथा टिकाऊ उपयोग के फैसलों के जरिए उपलब्ध संसाधनों का स्थायी उपयोग और संरक्षण सुनिश्चित किया जाता है।

इस परियोजना का उद्देश्य जैविक संसाधनों तक बेहतर पहुंच बनाना, उनके आर्थिक मूल्य का आकलन करना और स्थानीय लोगों के बीच उनके लाभों को बेहतर ढंग से साझा करना है। इसे देश के दस राज्यों- आंध्र प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, गोवा, कर्नाटक, ओड़ीशा, तेलंगाना और त्रिपुरा में चलाया जा रहा है। भारत में

जैव विविधता के कई आकर्षक वैश्विक केंद्र हैं। मसलन, सिक्किम में पक्षियों की 422 प्रजातियां और तितलियों की 697, फूलों के पौधों की साढ़े चार हजार, पौधों की 362 प्रजातियां और सुंदर आर्किड फूलों की समृद्ध विविधता है।

जंतुओं और वनस्पतियों की अनगिनत प्रजातियां ही हिमालय को जैव विविधता का अनमोल भंडार बनाती हैं। यहां मौजूद हजारों छोटे-बड़े ग्लेशियर, बहुमूल्य जंगल, नदियां और झरने इसके लिए उपयुक्त जमीन तैयार करते हैं। मध्य हिमालय में बसे उत्तराखंड में ही वनस्पतियों की 7000 और जंतुओं की 500 महत्त्वपूर्ण प्रजातियां मौजूद हैं। आज हिमालयी क्षेत्र में जैव विविधता को कई खतरे भी हैं। इसकी मुख्य वजहें जलवायु परिवर्तन से लेकर जंगलों की कटान, वहां बार-बार लगने वाली अनियंत्रित आग, जल धाराओं का सूखना, खराब वन प्रबंधन और लोगों में जागरूकता की कमी आदि हैं। इस वजह से कई प्रजातियों के सामने अस्तित्व का संकट है। ऐसी ही एक वनस्पति प्रजाति है आर्किड, जिसे बचाने के लिए उत्तराखंड में पिछले कुछ सालों से कोशिश हो रही है।

आर्किड पादप संसार की सबसे प्राचीन वनस्पतियों में है, जो अपने खूबसूरत फूलों और पर्यावरण में अनमोल योगदान के लिए जानी जाती है। उत्तराखंड में आर्किड की लगभग ढाई सौ प्रजातियां पहचानी गई हैं, लेकिन ज्यादातर अपना वजूद खोने की कगार पर हैं। जीव वैज्ञानिकों का कहना है कि कम से कम 5 या 6 प्रजातियां विलुप्त होने की कगार पर हैं। खुद जमीन या फिर बांज या तून जैसे पेड़ों पर उगने वाला आर्किड कई वनस्पतियों में परागण को संभव और सुगम बनाता है। पिछले दो वर्ष से उत्तराखंड वन विभाग के शोधकर्ताओं ने कुमाऊं की गोरी घाटी और गढ़वाल मंडल के इलाकों में आर्किड की करीब सौ से अधिक प्रजातियों को संरक्षित किया है।

संयुक्त राष्ट्र ने 2021-30 को पारिस्थितिकी संरक्षण का दशक घोषित किया है। इसलिए यह विश्वव्यापी चिंताओं का भी समय है, जब दुनिया के लोगों के सामने अपनी उस कुदरती पारिस्थितिकी का पुनरुद्धार करने की चुनौती है, जो विभिन्न कारणों से नष्ट हो रही है। जाहिर है, इस व्यापक चिंता से भारत के लोग भी अलग नहीं रह सकते। तेज आर्थिक वृद्धि और विकास नियोजन में पर्यावरणीय चिंताओं को समाहित न कर पाने की सीमाओं, कमजोरियों या दूरदर्शिता के अभाव के चलते भारत की जैव विविधता पर भी अनावश्यक और अतिरिक्त दबाव पड़ रहे हैं। ऐसे में संरक्षण की हर स्तर की पहल स्वागत योग्य है। खासकर यह ध्यान रखते हुए कि जैव संपदा और मनुष्य अस्तित्व के बीच सीधा और गहरा नाता है। जैव विविधता के इस केंद्र में भारत की वह करीब पचास फीसद आबादी भी आती है, जो गरीबी रेखा से नीचे बसर करती है, जंगल जिनका घर है और जंगल से जिनका रिश्ता अटूट है। यही लोग जैव विविधता के नैसर्गिक पहरेदार हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 05-06-24

जीत से ज्यादा सबक है

उमेश चतुर्वेदी

अठारहवीं लोक सभा चुनावों में भाजपा भले ही सबसे बड़ी पार्टी बन कर उभरी हो, लेकिन मोटे तौर पर देखें तो यह नतीजा उसके लिए सबसे बड़ा झटका ही माना जाएगा। 2014 में जब पार्टी 283 सीटों के साथ अपने दम पर बहुमत हासिल करके सत्ता में आई थी, तब कहा गया था कि देश का मतदाता प्रबुद्ध हो गया है। उसे अस्थिर सरकारें मंजूर नहीं हैं। 2019 के आम चुनाव ने इसी धारणा को आगे बढ़ाया और ब्रांड मोदी का नाम स्थापित हो गया, लेकिन 2024 में स्थितियां बदली हुई हैं। ये पंक्तियां लिखी जाते वक्त तक भाजपा अपने दम पर ढाई सौ का आंकड़ा भी पार करती नहीं दिख रही है। ऐसे में सवाल उठेंगे कि भारतीय जनता पार्टी कहां चूकी?

भाजपा को सबसे ज्यादा उम्मीद जिस उत्तर प्रदेश से रही है, वहां पार्टी को सीटों का सबसे ज्यादा नुकसान है। बिहार में भी वह सबसे बड़ा दल होती थी, लेकिन इस बार उसे जनता दल (यू) मात देता नजर आ रहा है। वह आगे निकल गया है। पश्चिम बंगाल में उसे बड़ी जीत की उम्मीद थी, तकरीबन सारे एक्जिट पोल ऐसी ही उम्मीद जता रहे थे, लेकिन वैसा नहीं हुआ। उलटे उसकी सीटें भी घट गई। राजस्थान में भी पार्टी बेहतर प्रदर्शन नहीं कर पा रही है। राज्य की आधी सीटों पर ही जीत हासिल होती नजर आ रही है। पार्टी को हरियाणा में भी झटका लगा है। लेकिन प्रज्ज्वल रेवन्ना कांड के बाद जिस कर्नाटक से उसे सबसे ज्यादा झटके की उम्मीद थी, वहां से उसे उतना नुकसान नहीं हुआ है।

भाजपा भले ही तमिलनाडु से बहुत उम्मीद कर रही थी, लेकिन वहां भी उसे 2014 की तरह महज एक सीट पर ही जीत मिलती नजर आ रही है। भाजपा को महाराष्ट्र में भी बड़ा नुकसान हुआ है। पिछली बार पार्टी के यहां से 22 सांसद जीते थे। लेकिन इस बार उसकी सीटें आधी रह गई हैं। एनसीपी से अलग होकर भाजपा का साथ देने वाले अजित पवार को महज एक ही सीटें मिलती नजर आ रही हैं। कुल मिला कर कहा जा सकता है कि भाजपा को उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, बिहार और हरियाणा से बड़ा झटका लगा है। हालांकि पार्टी को सबसे ज्यादा समर्थन मध्य प्रदेश से मिला है। गुजरात में भी उसका गढ़ बचा हुआ है। असम, अरु णाचल प्रदेश, उत्तराखंड और हिमाचल में भी उसका जादू चल रहा है।

सवाल यह है कि आखिर, भाजपा उत्तर प्रदेश में क्यों कमजोर हो गई? फौरी तौर पर देखें तो सबसे बड़ा कारण यहां के युवाओं के गुस्से को बड़ा कारण माना जा रहा है। राज्य में बार-बार परीक्षाओं के पेपर आउट होते रहे। इससे युवाओं में गुस्सा रहा। इसकी वजह से उनकी नौकरियां लगातार दूर जाती रहीं। अग्निवीर योजना को लेकर विपक्षी दलों विशेषकर कांग्रेस नेता राहुल गांधी और सपा नेता अखिलेश यादव ने जिस तरह मुद्दा बनाया, उसने युवाओं में भाजपा के खिलाफ गुस्सा भर दिया। राम मंदिर के निर्माण के बाद समूचा देश जिस तरह राममय हुआ था, उससे भाजपा को उम्मीद थी कि पार्टी को रामभक्तों का बहुत साथ मिलेगा। लेकिन उत्तर प्रदेश में ही राम की लहर नहीं चल पाई।

उत्तर प्रदेश में भाजपा की मौजूदा हालात के चलते 1999 का आम चुनाव याद आ रहा है। तब उत्तराखंड भी उत्तर प्रदेश का हिस्सा था, इस लिहाज से उत्तर प्रदेश में लोक सभा की 85 सीटें थीं। 1998 के आम चुनावों में भाजपा को राज्य से 52 सीटें मिली थीं। लेकिन बाद में कल्याण सिंह ने बागी रुख अपना लिया तो अगले ही साल हुए आम चुनावों में भाजपा की 23 सीटें घट गई। कुछ ऐसी ही स्थिति इस बार भाजपा की उत्तर प्रदेश में होती दिख रही है। पार्टी अपना आकलन तो करेगी, लेकिन मोटे तौर पर माना जा रहा है कि भाजपा को राज्य में सबसे ज्यादा नुकसान युवाओं के गुस्से, राज्य सरकार के स्थानीय स्तर पर भ्रष्टाचार ना रोक पाने और गलत उम्मीदवार देने की वजह से हुआ। उदाहरण के लिए बलिया से नीरज शेखर की उम्मीदवारी पर पार्टी के ही लोगों को सबसे ज्यादा ऐतराज रहा। खुद प्रधानमंत्री मोदी

भी डाक मतमत्रों में छह हजार से ज्यादा वोटों से पीछे चलते रहे, इसका मतलब साफ है कि भाजपा को लेकर राज्य में एक तरह से गुस्सा था, जिसे भांपने में पार्टी नाकाम रही।

बिहार के बारे में माना जा रहा था कि नीतीश को नुकसान होगा लेकिन इसके ठीक उलट नीतीश अपनी ताकत बचाए रखने में कामयाब हुए हैं। राज्य में अब जनता दल सबसे बड़ा संसदीय दल है। तो क्या यह मान लिया जाए कि 2020 के विधानसभा चुनावों में कमजोर किए जाने की कथित कोशिश को पलट दिया है? पार्टी को महाराष्ट्र में शायद अजीत पवार को साथ लाना उसके वोटरों को पसंद नहीं आया। भाजपा ही उन्हें राज्य की सिंचाई घोटाले का आरोपी मानती रही और उन्हें ही उपमुख्यमंत्री बनाकर ले आई। जब कोई विपक्षी व्यक्ति पार्टी या गठबंधन में लाया जाता है, तो सबसे ज्यादा जमीनी कार्यकर्ता को परेशानी होती है। वह पसोपेश में पड़ जाता है कि कल तक वह अपनी पार्टी लाइन के लिहाज से जिसका विरोध करता रहा, उसका अब कैसे समर्थन करेगा। महाराष्ट्र का कार्यकर्ता इसीलिए निराश रहा। जिसका असर चुनावी नतीजों पर दिख रहा है।

हरियाणा के प्रभुत्वशाली जाट मतदाताओं को सबसे ज्यादा गुस्सा अग्निवीर और शासन में उसकी घटती भागीदारी को लेकर रहा। इसकी वजह से यहां का अधिसंख्य मतदाता पार्टी से रुष्ट हुआ और नतीजा सामने है। राजस्थान में भाजपा का कार्यकर्ता ही मुख्यमंत्री भजनलाल को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। पार्टी की दिग्गज नेता वसुंधरा को किनारे लगाया जाना भी भाजपा की अंदरूनी राजनीति पर असर डाला। इसका असर है कि पार्टी राज्य में अपेक्षित प्रदर्शन नहीं कर पाई। पश्चिम बंगाल में ममता अपने किले को बचाने में कामयाब रहीं। हालांकि ओडिशा में पार्टी का जबरदस्त प्रदर्शन रहा जहां राज्य सरकार के साथ ही संसद की ज्यादातर सीटों पर वह काबिज हो चुकी है।

इस चुनाव ने यह भी संदेश दिया है कि गठबंधन की राजनीति खत्म नहीं हुई है। दो कार्यकाल में अपने दम पर बहुमत हासिल करने के चलते मोदी-शाह की जोड़ी लगातार अपने एजेंडे को लागू करती रही लेकिन अब गठबंधन की सरकार होगी, इसलिए अब इस जोड़ी को पहले के दो कार्यकाल की तरह काम करना आसान नहीं होगा। एक धारणा यह भी बन गई थी कि जिस संगठन के चलते भाजपा की पहचान थी, वह धीरे-धीरे किनारे होता चला गया। लेकिन बहुमत न हासिल होने की स्थिति में अब संगठन की अहमियत बढ़ेगी। इस चुनाव का संदेश यह भी है कि संगठन को जमीनी लोगों पर भरोसा करना होगा। भाजपा के लिए राहत की बात यह है कि तीसरी बार वह सत्ता पर काबिज होगी। उसने उन राज्यों में भी अपनी उपस्थिति बनाने में कामयाबी हासिल की है, जहां वह नहीं थी।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 05-06-24

जनादेश का संदेश

संपादकीय

अठारहवीं लोकसभा चुनाव के परिणाम न केवल चौंकने, बल्कि सोचने पर भी मजबूर कर रहे हैं। कोई बहुत बड़ा उलट-फेर नहीं है, पर जो हुआ है, उसकी तरह-तरह से विवेचना संभव है। अगर शुद्ध गणितीय दृष्टि से देखें, तो कुल मिलाकर, केंद्र में सत्तारूढ़ प्रमुख पार्टी को जोर कम हुआ है। चार सौ पार पहुंचने का उसका मनसूबा पूरा नहीं हुआ। पिछले चुनाव में भाजपा को अकेले ही 303 सीटों के साथ भारी बहुमत मिला था, पर इस बार बहुमत दरकता दिखा है। वैसे, भारत जैसे राजनीतिक, सामाजिक विविधता वाले देश में यह कोई कम बड़ी बात नहीं कि एक पार्टी-एक नेता नरेंद्र मोदी लगातार दो बार सत्ता में रहने के बावजूद तीसरी दफा भी मिले-जुले जनादेश के बाद सरकार बनाने में सक्षम हो गए हैं। उन्हें न जाने क्या-क्या कहा गया, लेकिन व्यापकता में लोगों की नजरों में वह अभी भी देश के नंबर वन नेता हैं। हां, यह जरूर है कि साल 2014 और साल 2019 के चुनाव में भाजपा को अकेले ही बहुमत हासिल था और अन्य सहयोगियों के साथ वह बहुत आसानी से दस साल तक सरकार चला पाई। अब ताजा चुनावी नतीजे पहला इशारा तो यही कर रहे हैं कि तीसरी बार भाजपा को सरकार चलाने में उतनी सुविधा नहीं होगी। मतलब, देश में दस साल बाद फिर गठबंधन पर निर्भरता का दौर लौट आया है।

विपक्ष के नजरिये से अगर परिणामों को देखा जाए, तो यह एक बड़ी कामयाबी है कि प्रमुख विपक्षी गठबंधन के पास सवा दो सौ से ज्यादा सीटें हैं। लोकसभा चुनाव 2019 में विपक्षी गठबंधन यूपीए के पास 92 सीटें थीं, पर अब इंडिया ब्लॉक के पास इतनी सीटें हैं कि वह मजबूती के साथ सत्ता पक्ष को चुनौती दे सकता है। पिछले चुनाव में समाजवादी पार्टी विपक्ष में तो थी, पर कांग्रेस के साथ नहीं थी, इस बार कांग्रेस के साथ उसका होना खासतौर पर उत्तर प्रदेश में रंग लाया है। इस चुनाव में समाजवादी पार्टी के साथ ही कांग्रेस को भी बहुत लाभ हुआ है। समाजवादी पार्टी देश में तीसरे नंबर की पार्टी बनकर उभरी है, तो देश में दूसरे नंबर की पार्टी के रूप में कांग्रेस ने अपने प्रदर्शन को बहुत सुधारा है। पिछले दो चुनावों में वह 44 और 52 सीटों पर सिमट गई थी, जिससे मुख्य विपक्षी पार्टी और नेता प्रतिपक्ष का आधिकारिक दरजा भी उसे नहीं मिल सका। इस बार कांग्रेस के पास 20 प्रतिशत के करीब सीटें हैं और उसे मुख्य विपक्षी होने का आधिकारिक दर्जा मिल जाएगा। अत: लोकसभा में कांग्रेस के पास एक नई शुरुआत करने का मौका है।

गौर करने की बात है कि इस चुनाव में गठबंधन की बहुत बड़ी भूमिका रही है। जहां, भाजपा इस बार गठबंधन के मोरचे पर कमजोर थी, वहीं कांग्रेस ने आगे बढ़कर गठबंधन किया। यहां यह याद कर लेना जरूरी है कि गठबंधन करके आगे बढ़ने के प्रति कांग्रेस जब गंभीर नहीं थी, तब उसे सियासी नुकसान हुआ था और देश में प्रमुख दल होने का उसका गौरव भी छिन गया था। इस बार चुनाव से पहले कांग्रेस ने गठबंधन के प्रति पर्याप्त गंभीरता दिखाकर एक नए प्रकार की राजनीतिक संस्कृति को जन्म दिया है, यह संस्कृति भले ही भाजपा को उखाड़ फेंकने के लिए खड़ी हुई, पर लगता है, आने वाले कुछ वर्षों में विपक्षी गठबंधनों के लिए यही तरीका मुफीद है। जहां तक सत्ता पक्ष की बात है, समर्थन में आई कमी सोचने का अवसर है और यह सोचना तब ज्यादा सार्थक होगा, जब जनता के अनुरूप और अच्छी नीतियों के साथ कामकाज में सुधार किया जाएगा।

Date: 05-06-24

उत्तर भारत में फिर गठबंधन की गूंज

नीरजा चौधरी, वरिष्ठ राजनीतिक विश्लेषक

इस बार का लोकसभा चुनाव अंकुश लगाने वाला साबित हुआ है। लगातार दो बार अपने बूते बहुमत पाने वाली भाजपा मानो थम गई है। लोगों के मन में चुनाव से पहले कई तरह की आशंकाएं थीं- कहीं हम एकदलीय निरंकुश सरकार की ओर तो नहीं बढ़ रहे? क्या संविधान में मनमर्जी का बदलाव होने जा रहा है? राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों के दलित टोलों में डर था कि यदि संविधान बदल दिया गया, तो क्या उनका आरक्षण खत्म कर दिया जाएगा? उत्तर प्रदेश के राजपूत चिंतित थे कि यदि बेलगाम सरकार आई, तो शायद वह मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को दिल्ली बुला ले?

सवाल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ व भाजपा के आपसी रिश्ते को लेकर भी थे। इस बार कई जगहों पर संघ उस तरह सक्रिय नहीं दिखा, जितना वह पिछले चुनावों तक था। फिर, टिकट बंटवारा भी एक बड़ा मसला रहा। बाहरी लोगों को टिकट देने से पुराने कार्यकर्ता खुश नहीं थे। वे इसे 'भाजपा का कांग्रेसीकरण' कहने लगे।

इन सब विवादों को भाजपा नेतृत्व द्वारा नजरंदाज करने की नीति से यह शक गहराने लगा कि '400 पार' का नारा यूं ही नहीं दिया गया है। लिहाजा, इस जनादेश का संकेत यही है कि गठबंधन के बूते भाजपा सरकार तो बना सकती है, पर उसकी लगाम अब सहयोगी दलों के हाथों में होगी। हालांकि, यहां प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की तारीफ जरूर की जानी चाहिए, क्योंकि दस साल के शासन के बाद उनके नाम पर ही वोट मांगे गए और भाजपा सबसे बड़ी पार्टी बनने में सफल रही। मोदी पार्टी का चेहरा न होते, तो भाजपा के लिए इतनी सीटें जुटाना इस बार काफी मुश्किल होता।

इस चुनाव की असली कहानी उत्तर प्रदेश ने लिखी है। बाकी राज्यों का नतीजा काफी कुछ प्रत्याशित है, बेशक कुछ सीटें ऊपर-नीचे हैं। मसलन, महाराष्ट्र में शुरुआत से ही 'इंडिया' ब्लॉक के असरदार रहने के कयास लगाए जा रहे थे, जिसकी वजह थी, उद्धव ठाकरे और शरद पवार के प्रति सहानुभूति। लोगों ने देखा था कि किस तरह से इनकी पार्टियों को तोड़ा गया। यहां तक कि इनके नाम और चुनाव-चिह्न तक छीन लिए गए। इसीलिए, तंत्र व विधायकों की जुगलबंदी पर सहानुभूति की लहर भारी पड़ गई।

पश्चिम बंगाल में भी ममता बनर्जी का प्रदर्शन चौंकाता नहीं है। उन्होंने अकेले लड़कर न सिर्फ अपनी जमीन बचाई, बल्कि भाजपा से कई सीटें छीन लीं। इसी तरह, राजस्थान में यह अंदेशा था कि जाट और राजपूत की नाराजगी एनडीए को भारी पड़ सकती है और वह दिखा भी है। हरियाणा में जाट दो वजहों से सरकार से नाराज थे- किसान आंदोलन और महिला पहलवानों से दुर्व्यवहार। इसका असर नतीजों पर पड़ा। ओडिशा में भी भाजपा ने जो कमाल दिखाया है, उसकी चर्चा पहले से थी। वहां लोकसभा ही नहीं, विधानसभा चुनावों में भी बीजद को करारी मात मिली है।

बिहार की तस्वीर भी अलग नहीं है। यहां मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का राजद छोड़ भाजपा का दामन थामना काम कर गया। गैर यादव, महादलित, पसमांदा मुसलमान जैसे पिछड़े समुदाय नीतीश के साथ रहे हैं, जिसमें सेंध लगाने की

कोशिश तेजस्वी यादव ने चुनाव के दौरान की, मगर वह सफल नहीं हो सके। फिर, यहां भाजपा में उत्तर प्रदेश जैसा अंदरखाने कोई विवाद भी नहीं था।

जाहिर है, चौंकाने वाले नतीजे सिर्फ उत्तर प्रदेश से आए हैं। यहां समाजवादी पार्टी इतना अच्छा करेगी या कांग्रेस इतनी सीटें ले आएगी, यह किसी ने नहीं सोचा होगा। इसका एक बड़ा कारण है, सपा का नया प्रयोग। उसने 'एमवाई' का विस्तार किया, यानी मुसलमान व यादव प्रत्याशियों को बहुत कम सीटें दीं। दो दर्जन से अधिक उम्मीदवार उसने गैर-यादव ओबीसी के उतारे, दलित व जाटव को टिकट दिए। यह भी एक वजह है कि दलितों के मत सपा को गए। लगता यही है कि बसपा का आधार उससे छिटक रहा है। माना जा रहा है कि मायावती के 25 फीसदी दलित वोट सपा को मिले हैं, जबकि 10 फीसदी भाजपा को। वैसे, उत्तर प्रदेश में भाजपा की इतनी बुरी स्थिति की एक वजह राजपूतों की नाराजगी भी है। पहले दो चरणों में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के राजपूतों ने वोट देने के बजाय घर में रहने का फैसला किया था। नतीजतन, उनको मनाने के लिए भाजपा नेतृत्व को कई दौरे करने पड़े थे।

यह आम चुनाव मतदाताओं के हिंदू-मुसलमान मुद्दे से छिटकने की मुनादी भी करता है। इस बार धर्म के आधार पर ध्रुवीकरण की कई कोशिशें की गईं, लेकिन उसका जमीन पर कोई असर नहीं दिख रहा। बेशक लोग खुद को धर्म से जोड़ते हैं। यहां तक कि कई जाटवों का चुनाव-पूर्व कहना था कि यदि मायावती किसी मुस्लिम उम्मीदवार को टिकट देती हैं, तो वह भाजपा को वोट देंगे। मगर लगता यही है कि हिंदू-मुसलमान के नाम पर वे अब शायद ही तनाव चाहते हैं।

कांग्रेस के लिए यह नतीजा संजीवनी है। विशेषकर उत्तर प्रदेश में उसे फिर से पांव जमाने का मौका मिल सकता है। अमेठी व रायबरेली घूमते हुए मुझे वीपी सिंह के समय की याद आ रही थी, क्योंकि कांग्रेस नेताओं की हर पंक्ति पर लोग उसी तरह उत्साहित होते दिखते थे, जैसे वीपी सिंह के भाषणों से। तब अंदेशा था कि कांग्रेस इस भीड़ को शायद ही वोट में बदल सकेगी, क्योंकि उसके पास सांगठनिक ढांचा तक नहीं है। पर अमेठी की जीत ठोस संकेत है कि उसका एक कार्यकर्ता किसी मंत्री को मात दे सकता है। लगता है कि पार्टी ने राज्य में अपने पुनरोद्धार की ओर कदम बढ़ा दिए हैं।

साफ है, विपक्ष ने पूरा दमखम दिखाया है। संसद में मजबूत विपक्ष की वापसी कई लोगों को सुकूनदेह लग रही होगी, क्योंकि इससे सरकार और संस्थान, दोनों पर अंकुश लगाने में मदद मिलती है। मगर इसे मोदी सरकार के खिलाफ मोहभंग की शुरुआत मान सकते हैं? इसके लिए फिलहाल हमें और आंकड़ों की जरूरत होगी।